तुम्हें शब्द दूं



अनुभूति चतुर्वेदी

तुम्हें शब्द दूँ की कविताएं आज के मनुष्य और उसकी अस्मिता के सम्बन्ध में कई सार्थक प्रश्नों स जूझती हैं। इनमें आक्रोश है, नयापन है और अपने परिवश तथा युगीन समस्याओं से साक्षात्कार करने की अपूर्व क्षमता है। इन कविताओं के द्वारा एक नई भाषा का ईजाद अनुभूति ने किया है जो उनकी नितान्त अपना शैली ह।

अनुभूति चतुर्वेदी के इसके पूर्व प्रकाशित कविता संग्रह 'उम्र के साथ-साथ' की काव्य जगत् म पर्याप्त चर्चा रही है। वह युवा पीढ़ी का एक महत्त्वपूर्ण काव्य-सग्रह माना जाता है। 'तुम्हें शब्द दूँ' में भी कवयित्री विराट् फलक पर देश, राजनीति, नारी-स्वातन्त्र्य तथा नितान्त निजी अनुभवों को तटस्थ अभिव्यक्ति दने में सक्षम है।

तुम्हें शब्द दूँ की कविताएं अपनी नई भंगिमा, नई दृष्टि और सार्थक प्रयोगों के लिए काव्य जगत् में चर्चित रहेंगी। इन कविताओं में युवा पीढ़ी के अंतर्द्वंद्व और मानसिकता को अत्यन्त सहज और जीवन्त रूप में प्रतिभासित किया गया है। निश्चय ही इन कविताओं के प्रकाशन से हिन्दी कविता समृद्ध हुई है। इन कविताओं को युवा कविता का प्रामाणिक दस्तावेज कहा जा सकता है।

तुम्हें शब्द दूं

पल्लवी प्रकाशन, दिल्ली-९२

तुम्हें शब्द दूं

अनुभूति चतुर्वेदी

हिन्दी अकादमी, दिल्ली के सौजन्य से प्रकाशित

मूल्य : चालीस रुपये / प्रथम संस्करण, १९८९ / आवरण-शिल्पी : हरिप्रकाश त्यागी / प्रकाशक : पल्लवी प्रकाशन, ए-३५, निर्माण विहार, दिल्ली-९२ / मुद्रक : कोणार्क प्रिंटर्स, दिल्ली-३२

TUMHEN SHABDA DOON : Anubhuti Chaturvedi Rs. 40.00

अनुक्रम

सूर्य की प्रतीक्षा

ऊपर बर्फीली चट्टान है
नीचे तपता दरिया
इस बीहड़ जंगल में
चलते-चलते
थक गए हैं पांव

प्रकाश नहीं किसी ओर
न जाने
कब उगेगा सूरज
अलाउद्दीन के चिराग-सा
और
एक मीठी नदी निकलकर
शांत कर देगी
इस थकान को !

मौन शब्द

उसके पास कोई जवाब नहीं
मात्र बुदबुदाने, झल्लाने और
सिसकने के

हैं कुछ शब्द
जिन्हें वह बोल नहीं सकती
उतार सकती है
ढेरों कागजों पर

जो उसकी तरह बेजुबान हैं :
मूक !

महाकाव्य का जन्म

उसने शुरू की थी यात्रा
बिन्दु से

बिन्दु बढ़ते-बढ़ते
एक आकार में बदल गया
और अपनी परिधि
लांघकर
एक शताब्दी का महाकाव्य
बन गया।

भागीदार नहीं कोई

एक ऐसी लड़ाई
जो कभी न खत्म होगी
उसे जीतनी है

एक महाभारत
जो उसने स्वयं शुरू किया था
लड़ना है
अकेले, निहत्थे
कोई उसमें भागीदार न होगा

उसने आक बोये हैं
और चाहती है आम
जो नामुमकिन है !

स्मृति

अब चुभती नहीं कोई बात
दुखता नहीं कोई जख्म

चुभती है
सिर्फ
तुम्हारी याद ।

उधेड़बुन में

किसी उधेड़बुन में
क्या कुछ कर दिया
सब कुछ
अनायास, बदहवास ।

बना लिया नीड़
और उगा दिये फूल

कई समझौते
जो थे
निहायत नाजुक
बिना जाने
जोड़ लिये
और भूल से मिटा दिये
अत्यंत आत्मीय क्षण ।

मैं सन्नाटा बुनती रही
हलचल में, क्रोध में
सम्बन्धों को ढोती रही
मशीन की तरह
उधेड़बुन में

न जाने कब और कैसे
ज़िन्दगी ने नये-नये रूप
अपना लिये !

छलावा

शहर का धुआं
उगलता हुआ मवाद
मेरे बाजुओं को जकड़ रहा है

कई विषैले केंचुए पांव में चिपकाये
मैं चल रही हूं अनवरत।

कालतोर की सड़कों की चिपचिपाहट
मेरे स्नायुओं में जम गयी है

जीवन रह गया है
एक तप्त रेगिस्तान
झुलस गईं स्मृतियां।

हम खोज रहे हैं
संतुष्टि
रिक्तता में
गोया कि मासूम बच्चे हैं

छल रहे हैं
स्वयं
अपने को।

उम्मीद

थक गई हूं
घुमावदार रास्तों को पार करते हुए

कितने ही रास्ते
बदहवास होकर
पार कर डाले अनायास।

हर चौराहे पर मिल गए नये रास्ते
बोझिल कर देने वाले
और उम्मीदों का एक नया तांता

उम्मीद
एक लम्बी बीमारी होती है
जो जोंक की तरह
चिपक जाती है

तन्द्रा टूटने पर
कभी मझधार में फेंकती है
और कभी
बुलन्दियों पर पहुंचा देती है।

प्रेरणा

अक्सर बादलों की झड़ी जब लगती है
तुम आते हो
कान में कुछ बुदबुदाते हुए

हंसते हो, किलकारी मारते हो
सुनाते हो शास्त्रार्थ, इतिहास
और अनेक वृत्तान्त

मैं सुनती हूं
सुलझे श्रोता की तरह
घण्टों निकल जाते हैं
असीम में पहुंच जाते हैं हम।

दुनिया बौनी हो जाती है
हम मुट्ठी में उसे भर
पर्वत के करीब
घर बनाते हैं
कुंजों वाला, गुलाबों से भरा।

हिमालय की विशालता में
अपनी आत्मा को दूर तक
फैलाते हैं

तुम पहाड़ों को आराध्य मानते हो
मैं प्रेरणा

उसी प्रेरणा से करती हूं
मैं सृजन
ब्रह्मांड का
सिमट जाते हैं हम
विश्व में

तुम छोड़ जाते हो
चुपके से मुझे वीराने में
विश्व-दूत बनाकर

तिलमिलाकर रह जाती हूं
अकेलापन पाकर
प्रवंचना में

एक मोक्ष की तृप्ति है
कि तुम और कहीं नहीं
यहीं हो
मेरे करीब

अदृश्य होते हुए भी
जीवनदायिनी प्रेरणा के रूप में !

विश्रृंखल

उसके सामने
अभी ही
खिला था नन्हा फूल

खिलकर
हुआ था जवान

वह खुश था
फूल स्वस्थ और सुन्दर है
एक अपनत्व, स्नेह से भर जाता था वह
जब वह उसे
खिलखिलाते, किलकारी मारते देखता

अचानक एक दिन
हवा का दैत्य
तेज बहाव से मुरझा गया उसे

टूट गया
उसका मासूम फूल
उजड़ गया
हवा के साथ ।

आंखों में आंसुओं को थामे
वह उस सुन्दर फूल पर
रोता रहा
भटकता रहा
बरसों तक लगातार ।

आइना

वक्त बहुत जल्दी खिसक गया

आइना वही था
आकृतियां आकार बदलती रहीं

कभी इसमें किलकारी मारी थी
बचपन ने
कभी चेहरे की
लाली शर्मायी थी

लावण्य का अद्‌भुत तेज
भेद गया था उसे ।

अब आइना धुंधला गया है
आकृतियां बड़ी हो गई हैं
बदल गया है
सब कुछ,
तमाम रंग ।

दरवाजों पर दस्तक

दर्द अंतड़ियों की मसाज कर रहा है
और यादें उन पर छिड़क रही हैं नमक

अनायास ही कहीं से ज़हरीले कांटे उभर आये हैं,
कहीं उग आयी हैं सुइयां

समय, भाले की धार-सा
मथना चाहता है संवेदन

शुष्क, निढाल पड़े हैं
शब्द

सपाट जमीन पर फिसलकर
शून्य में खो जाती हैं
आवाजें
और बेसुध होकर
खटखटाती हैं
दरवाजे ।

गंतव्य

चौराहे पर खड़ी
आज वह देखती है
दूर तक जाती अनेक सर्पाकार राहें

वह हंसती है—
गर्वोन्मत्त
कि उसकी पगडंडी
सही गंतव्य पर जा रही है।

समझौता

मैं अब नहीं
करूंगी प्रश्न
प्रश्न की होती है बुनियाद

लेकिन बंजर जमीन पर
थिर नहीं होते प्रश्न
कभी वे जुड़ते हैं
कभी बिखर जाते हैं।

अपने आप से
समझौता ज्यादा बेहतर है
उसमें होता है
एक सुकून
एक ठोस आवाज़
एक़ सच्ची बुनियाद !

यादें

यादें इतनी लम्बी क्यों हैं
उन्हें सोचने
सदियां चाहिए
यादें कभी बुढ़ाती नहीं
जख्मों को हमेशा तरोताजा रखती हैं

तुम्हारी याद,
हादसे
और चुभन झुरमुटों को हिलाती हुई
खुशबुओं को फैलाती है

मानो
बालू पर बिखरी
सफेद धूप-सी
मीठी याद !

दावानल

एक दावानल धधक रहा है
स्नायुओं में
दूसरा ब्रह्माण्ड में

दोनों को संभाले
ईसा, सुकरात की तरह
वहन करती जा रही हूँ
खामोश ।

ज़िन्दगी

(१)

कोरों से टपके
हज़ारों अश्रु
एक इतिहास बना देंगे
और डूब जाएगी
ज़िन्दगी ।

(२)

डायरियां भरती हैं
कटते हैं ज़िन्दगी के पृष्ठ

कलमों की नोकों से
लगता है पन्ने
यूं ही भरते जायेंगे
मगर ज़िन्दगी रुक जाएगी ।

सृजन

हजारों खून के कतरे गिरकर
बनते हैं शब्द
और एक खूनी नदी में
मथकर
डूबकर
होता है सृजन।

तुम्हें शब्द दूं

तुम्हें शब्द दूं
या परिभाषा
या कोई इतर संसार

जिसकी तमन्ना में
भटकते हुए
तुमने शताब्दी गुजार दी।

नींव की चिन्ता

क़िसी की कब्र पर
महल नहीं बना करते
न ही सीधा खड़ा देवदार
ठूंठ होता है अनायास।

मुश्किल है
बरगद को हिलाना
मुश्किल है
उसकी पुख्ता जड़ों को भूमिसात करना।

अपनी मजबूती को
हिला देगी सतह
क्योंकि हम
पैर रख रहे हैं
फिसलती ज़मीन पर

न जाने
सपाट ज़मीन पर
कब बनेंगे
पुख्ता महल ?

नई कोंपल

उसके आंगन में
नयी कोंपल उगी है
खुशबू ताजी और नाजुक है
वह अभी-अभी फूटी है

अनेक तमन्नाएं एक-एक कर
उसमें गुंथी हैं

उसकी गहरी, चमकीली आंखों में
एक भरा-पूरा संसार है
थिरकन में
पहाड़ तोड़ने की क्षमता

जब वह चहकी थी पहली बार
तो कोयल आम को छोड़
उसके करीब आयी थी
चमन में बहार थी

फूल, पौधे और बेलें
रफ्तार से बढ़ने लगी थीं
उसके आंगन की तितलियां
मधु बना रही थीं अनायास।

खिलखिलाहट

हजारों सिसकियां
अन्दर से फूटकर
एक विस्फोट बन गईं ।

ध्वंस

ध्वंस हुआ था
पहली बार
उसका हृदय

एक बच्चे ने गुलेल मारी थो

तब से अब तक
ध्वंस-ही-ध्वंस—
मात्र ध्वंस।

रात

यह खामोश रात
उदासियों में घिरे जज़्बात

स्तब्ध पत्ते

केवल एक आहट है
किसी के सिसकने की ।

न्याय

ज़िन्दगी की अदालत में
तुम चुपके से बच निकले
और मैं कैदी बनकर
कठघरे में बन्द हो गई

लेकिन
इस संसार से इतर
उस दूसरी अदालत में
जब तुम मुजरिम बनोगे
तब
उजागर होगा
मेरा सत्य ।

मर्यादा का सेतु

(१)

मर्यादाओं का सेतु बनाते-बनाते
भावनाओं को जब्त कर लिया है
अब कुछ नहीं रखा
सम्बन्धों में
एक थोथी बुनियाद पर जीते हुए
खो गया है अपना अस्तित्व !

(२)

कभी-कभी
भावनाओं में बहकर
मर्यादा का बाँध टूटकर
बाढ़ की तरह
आत्मा को मथ देता है ।

मां

एकाग्र आत्मीय क्षणों में
उसने जीवाणुओं को
अपने पाक दामन में संजो लिया ।

धैर्य से उन्हें वहन करते हुए
पीड़ा की पराकाष्ठा में
एक असीम सांत्वना की अनुभूति पाई

सृजन की सुषमा
निहायत नयी थी, अपरिचित
फिर भी अत्यन्त आत्मीय !

पिता के लिए

मेरे पिता
तुमने
अपनी शक्ति को
एक अग्निकुंड बनाकर
मुझे अर्पित कर दिया

आशाओं भरे भविष्य से
सुसज्जित कर दिया मुझे
उम्मीदों का लम्बा तांता
मुझमें एक सोते की तरह फूट पड़ा

तुम्हारे रोपे बाग को
मैंने पल्लवित होते देखा

अच्छा लगा
तुम्हारा बोया बाग
मुरझाया नहीं
कई बागों को
उसने
सब्ज कर दिया
कई सुमन खिल उठे ।

नन्हीं बेटी के लिए

उसके आंगन में
खिली है कोंपल
तन्दुरुस्त और महकदार।

वह नाजुक है
अभी-अभी फूटी है

जब वह चहकी थी पहली बार
तो तितलियां फूलों पर मंडराने लगी थीं
कोयल कूकी थी बार-बार
घिर आया था वसंत

रंग-बिरंगी चिड़िएं
रोज़ आती थीं
आंगन के आस-पास
नन्हीं गौरैया बतियाती थी उससे
अनेक किस्से और गाथाएं

वह गर्वोन्मत्त थी
रंग-बिरंगा संसार देख
और प्रसन्न थी कि
उसका भविष्य कितना सुखद है
—कितना उज्ज्वल !

हार

कितना सुन्दर है
यह घर
लताओं से घिरा।

संगीत का मधुर आलम है
शायद यहीं जन्मी थी सरस्वती
और उसने सृजन को
पहचाना था
कोयल की कूक में

गायक ने मल्हार छेड़ा था
चारों ओर से
इन्सानियत में सराबोर
सन्तवाणी में वह
पवित्र सरोवर में तैरी थी
धर्मभेद, ऊंच-नीच से परे
वह अपने आप ही
महानतम बन गई थी।

भाग्य पर
कभी वह
सोचती है

नियति का स्रोत
पवित्र मेघ बनकर
उस मधुर, पवित्र
घर पर बरसता है !

शान्ति

नीम की छाँव तले
मिला है सुकून बरसों बाद

उसकी खुशबू से रक्त में बढ़ गयी है लाली
तरोताजा हो गई है अंतरात्मा

कब से वह
विषैली हवाओं का सेवन कर रही थी
अब मिली है शांति
वर्षों बाद ।

पत्नी

(१)

शेरनी-सी दिखती थी वह

वह सोच रहा था
शायद
स्पंदन प्रेरणा दे जाए
लेकिन प्रतिशोध में वह जल रही थी
मानो कोई नया अध्याय
जोड़ना चाहती हो।

(२)

उसकी आंखों में
आज
शांत, गहन सागर बह रहा था
वह मीठी झील में गोता लगा रही थी

वह सोचता था
कि दुनिया का खुशकिस्मत इन्सान वही है !

कारावास से मुक्ति

बरसों बाद
वह हंसा था
जोरों से खिलखिलाकर
उसने देखी थी
बाहर की दुनिया
मस्त और बेखबर !

सीकचों में
वह भूल गया था
कि उसका शहर
हो गया है अनजान
इन्सान बन गए हैं
स्वार्थी और शैतान।

वह तो कैद हो गया था
अंधेरी गुफाओं में
सिसकते आंसुओं और
बिलखते युग्मों में

आज वह मुक्त था
पर हंसी गायब थी उसके चेहरे से
वह एक और कारावास में
कैद हो गया था।

अहसास

(१)

अभी तो फुरसत भी न मिली थी
संभलने की
कि सुबह हो गई।

(२)

प्रगाढ़ आनन्द
बूंद से शुरू हो
समुद्र में समा गया।

भ्रम

सिमट गई है बहार
ठंडी हवाओं से निकलकर
उदास आवाज़
वह रही है लगातार।

मैं कमरे के दरवाज़े खोल
ताक रही हूं आकाश
फूल गुलाब के
बेलें मालती की

दूर पर कतार लगी है
सफेद फूलों की
सेज बनायी है
मानो किसी नयी दुल्हन की

ये खूबसूरत उद्यान
भेज रहा है
सुरभित श्वासें, सुगन्धि

यह पागल मौसम
मुझे बना रहा है
मनचली

कहीं कोई
फूल झरा
मैं समझी
आहट है
उनकी !

अंधेरी ज़िन्दगी

अंधेरे के
पत्तों को ओढ़े
एक शताब्दी गुज़ार दी उसने

उसमें वह भी
हो गई है काली स्याह

गुलाब के भ्रम में
उसने सर्प का फन थाम लिया
और
एक अभिशप्त भ्रम
उसकी पाक रूह को जला गया।

आह

दर्द जब चीत्कार कर रहा था
और रूह ठंडी हो चली थी
तभी ज़हन से निकली थी
एक पत्थर-तोड़ आवाज़

अतिक्रमण

दफनाकर उम्मीद
कब्रिस्तान में खड़ी हूं।

आभास

उसकी कनपटी की उलझी लटें
और माथे पर पड़ते बल
बता रहे हैं

कि वक्त करीब है
अंत का।

क्रांति

कागज़ों में पिरोये शब्द
एकजुट होकर
बना सकते हैं
एक महाकाव्य
और मचा सकते हैं क्रान्ति

पर
तोपें केवल फेंक सकती हैं गोले
मचा सकती हैं कोहराम
पर दे नहीं सकतीं शान्ति का पैगाम !

शांतिदूत

उसने चाहा था
शताब्दी को बदल देना
ध्वंस सभ्यता को
स्वस्थ मजबूत बनाना

आज क्यों जर्जर हो रही है संस्कृति
और गृहयुद्ध विकराल दानव की तरह
विश्व को डस रहे हैं।

दूर से आती प्रतिध्वनि
बार-बार संकेत करती है
तेज रफ्तार में बढ़ती हैं
बीमारियाँ

अणुबम के तेज झोंके
आहत करेंगे मानव शांति

हम मानव नहीं
बन गए हैं यंत्र
संवेदनाओं से दूर
जिससे

जब चाहे कुछ भी करवाया जा सकता है
रोबोट की तरह ।

इस माहौल से दूर
तपोवन याद आते हैं
जिनमें उठती ऊँकार की ध्वनि
मानसिक व्याधि नष्ट कर देती है

याद आते हैं
भारतभूमि के
महान् महर्षि, तपस्वी
जिनके मन्त्रोच्चार से वसुन्धरा
पवित्र हो जाती थी

उनके लिखे
महाकाव्य
आज भी भारतीय संस्कृति को
गर्वोन्मत्त करते हैं ।

हे रोबोट युग
ले लो हमसे
यह यंत्र
और दे दो
हमें शान्त, सरल जीवन
जहां हो निश्छलता
धूर्तता नहीं

हे मातृभूमि
मैं तुमसे वरदान मांगती हूं

शांतिदूत बनने का
ताकि दूर तक फैला सकूं
गांधी, सुकरात, नानक और बुद्ध के संदेश।

जननी

वह कितनी बलिष्ठ है
आत्मा से, कृत्य से
चाहे काया
कोमल हो
उसने कितनी जंग लड़ीं
और
धरती को चार चांद लगाए
भरत उत्पन्न करके।

जननी, बहन, भार्या, प्रेयसि
न जाने कितने रूप में
वह वर्णित है
प्रेरणा की स्रोत है

जन्म दिया कालिदास, तुलसी को
वह वीनस, मोनालीसा,
मरियम भी है
इतने विविध, सुन्दरतम् रूप को
पहचाना क्यों नहीं
किसी ने
हमेशा से भार मानकर
कूड़ा समझा

सबला को आज
जागरण की जरूरत है
नहीं तो धरती बीमारग्रस्त
भविष्य को जन्म देगी
और
शक्ति बन जाएगी मात्र एक धाय ।

वात्याचक्र

औरत बदहवास
कपड़े तितर-बितर
कंधे पर बच्चा

थका शरीर
देखती है आस-पास
मांगती है थोड़ा बहुत
अपने पेट भरने को

लेकिन
कौन देगा
कोई उसका अस्तित्व ही नहीं
संरक्षण नहीं
असुरक्षित घूमती है वह
वहशी निगाहें
दौड़ती हैं उसके चारों ओर।

गुजर गई उम्र
आ गया यौवन का उतार
शिथिल, जर्जर देह
बच्चों के भाग्य को कोसती

रहती है दिन-रात
गालियां बकती है

अंतिम क्षण में
चुपचाप
खड़ी है शिवालय में
आशा नहीं बचने की
कहां से लाए अपना कफन ?

समाज

दूर रोता रहा वह बच्चा
समाज से लड़ता रहा चुपचाप
—मां बेबस थी !

मसीहा

जिन्दगियां रात को रोती हैं
तनावों के
आगोश में खो जाती हैं

कभी
सता जाता है उनको चुपचाप
कोई वाक्य या सिलसिला

वह उगलती है
उसे धीमे
पैनी कलम की धार से
और निर्मित करती है
कोई प्रतिमान
शताब्दी का :

पैदा होता है
एक अमर मसीहा !

मानवता

रक्त तो उसका भी लाल था
पीला या सफेद नहीं
फिर यह कैसी चीत्कार, कैसा अत्याचार

कब तक जलती रहेगी इन्सानियत
कब तक टूटती रहेगी मर्यादा

आखिर कौन उठेगा
हममें से
बिगुल बजाने
मानवता का।

बदला

शांत शहर
फिर उबल पड़े हैं
ज्वालामुखी से
और मुर्दा औरतें
कई भयावह हरकतों में

मासूम आंख
चीख-चीखकर
पुकार रही हैं अधिकार
नये युग से साक्षात्कार

पता नहीं
यह खूंख्वार शहर
क्यों दफन होकर भी
फिर से उग आते हैं
बदला लेने !

परिणाम

कितनी उदास है रात
दरख्तों पर उग आए हैं जख्म
फूलों की कतार
झर-झरकर लुट गई है

रुद्ध हो गया है
एक प्रकाश
मस्तिष्क में बज रही हैं बिजलियां

दिल के हर एक कोने में
इकट्ठा हो गया है लावा
पता नहीं
विस्फोट होंगे किस ओर ?

पीला शहर

लकवा मार गया है शहर को
रुक गए हैं पांव
थम गया है ऋतु-चक्र

अब मौसम नहीं बदलते
हर मौसम पीला-सा लगता है

शेर मांद में खामोश पड़े हैं
इकट्ठे होकर तमाम लकड़बग्घे
शहर को लील रहे हैं चुपचाप।

आतंक ही आतंक
सुबह से शाम
खौफ़नाक रात
कुछ न कुछ दुर्घटना, कत्लेआम
रोज ही होती हैं अकालमृत्यु

यही है दिनचर्या !
बच्चे सुनते नहीं लोरी
दुबके रहते हैं मांओं की गोद में
या
सहमे रहते हैं घर के कोनों में

नहीं पाते
मातृभूमि की सोंधी खुशबू
और
सुबह की ताज़गी।

वह रोज सुनती है
मुर्दा लोगों की मनहूस बातें
और देखती है
पीला शहर
धीमे-धीमे अंतिम सांसें गिन रहा है।

३१ अक्टूबर

वह भयावह स्याह रात थी
कत्लों की मार-धाड़ थी
और
सहमे हुए कुत्ते सड़कों पर घूम रहे थे

खूनी दरिन्दे
सेंध लगा रहे थे
गलियों, फुटपाथों में
लूट रहे थे सब्जबाग
जानवरों की तरह रौंद रहे थे
गली, बाजार और मकान।

बिलख रहे थे बच्चे
ढूंढ रहे थे घर
उजड़ गया था
शहर

एक मृत्यु की गिरफ्त में
कैद था
जनसमूह
भूल गया था
धर्म
और इन्सानियत।

हुकूमत

यह हुकूमत है
यहां बलवा नहीं होता
चुपचाप सो जाता है
शहर

खिलौनों की तरह दाग दी जाती है
इन्सानियत
और कोई अफसोस नहीं करता
किसी की मौत का

स्नेह यहां मजाक है
चाहे प्रिया से हो या मातृभूमि से

भविष्य की नस्ल कमजोर है
तभी दूषित कीटाणु
हवा में बह रहे हैं

जाने कब
आयेगा देश में
नया आवेग
नया ज्वार।

सती

यमदूत-से सभी
उसके इर्द-गिर्द इकट्ठा हो गए थे
वह असहाय खरगोश की तरह
दुबकी हुई थी कोने में

कभी यहां, कभी वहां
बिलख रही थी
अपनी तकदीर पर

याद कर रही थी
प्यार भरा पिता का घर
मां के दुलार में
बीता बचपन।

फिर विवाह से
आज तक की पीड़ादायक लम्बी यात्रा
कोई साथ नहीं
उसके इस दुर्दान्त अकेलेपन का

सब हो गए हैं नपुंसक
या उससे भी ज्यादा भयभीत

कोई तो बने दयानंद, राममोहन राय
ये पागल लोग
अपनी आत्मा को ही
चंदन की चिता में जला रहे हैं।

सुहागिन जैसे ही वह हो रही है सती
लेकिन क्या
वह चिल्लाती हुई चिता से भाग सकती है
शायद नहीं।

महापुरुषों के नाम

उसने सुनी थी बात
अहिंसा, सत्य और शान्ति की
धर्म की,
इन्सानियत की !

लेकिन बड़े होने पर
उसे अहसास हुआ
कि धर्म संकुचित दायरों का पैबन्द है
और सत्य
दूसरों की इच्छाओं को
दमन करने का मूलमंत्र

असुरक्षा को देख
उसने स्मरण किया था
एक भव्य, सौम्य ललाट
जहां अनेक संघर्षों से भी
सिलवटें नहीं पड़ी थीं ।

बड़े-बड़े एटमी जुल्मों में भी
वह मुसकराता खड़ा रहा
अहिंसा की तीव्र पुकार को
विश्व में फूंकता हुआ

लेकिन यंत्रों के ज्वर ने
मानवता को भुला दिया
संस्कृति को बीमार कर दिया

दिन प्रतिदिन बढ़ते नृशंस अत्याचारों से
थक गई है मातृभूमि
और चिल्ला-चिल्लाकर पुकारती है
सुकरात, नानक और गांधी !

कन्याकुमारी : एक स्मृति

गहन सागर के तल में
तीन खौफनाक रंगों को
उसने अठखेलियां करते देखा

वह अमावस्या की रात थी
ठंडी, भयावह
शरीर में सुरसुरी भरने वाली

कन्याकुमारी की भव्य लहरें
उसे बार-बार चूमने आती थीं
लेकिन आसपास की भयावहता से आक्रान्त
दूर कहीं छिटक जाती थीं।

आज वहीं
उसने दानव को देखा है
उस विकराल सागर से कहीं भयावह,
निष्ठुर—
चीत्कार करता हुआ

उसकी आत्मा के आर-पार
भाले फेंकता

वह ठंडी झील में गोता लगा रही थी
और वह झाग को उड़ेल रहा था
चारों ओर

उसे कस रहा था
छटपटाते हुए

उसने आसमान को निहारा था
शायद कहीं असीम से
कोई स्नेह का आंसू टपके
और निरीह झील को शांत कर दे ।

समुद्र : एक बिम्ब

उफनता समुद्र
शांत हो
कितना विचित्र लगता

किसी बौखलाकर
थके आदमी की तरह।

मालवा की अद्भुत रात

विन्ध्याचल के घने पर्वतों से
ठंडी महक आती है तो
अहसास किसी चंदनबाड़ी का हो आता है

लम्बे, घुमावदार जंगल
दूर तक फैले
एक सुखद अनुभूति देते हैं

कभी कालीदास ने यहीं लिखे थे महाकाव्य
क्या खुशबू है इसकी काली मिट्टी में
संगीत भरी किलकारी मारता है
क्षिप्रा का घाट
अनेक ऋषि-मुनियों का ब्रह्मनाद

महाकालेश्वर की घण्टियां
स्वर्ग का रोमांच दे जाती हैं

कैसी मदहोश है रात
चहलकदमी करता नर समूह
सुबह से ज्यादा चौकन्ना,
उत्साही

मस्ती में
विभोर कर रही है
मालवे की मादक समीर :
खुशनुमा रात।

देवदासी

वह रूपसि,
नाचती रही उम्र भर
बेजुबान मूर्ति के सामने

नहीं बना
कोई उसका विश्वामित्र
या हमसफर
मात्र छलावे में
वह प्रताड़ित करती रही
भावनाओं को

इन्तज़ार करती रही
अपने उज्ज्वल भविष्य का

जीवन भर की तपस्या में
पाई उसने
एक वक्त की रोटी
एक सहारा

ईश्वर ने कभी नहीं पुकारा
फिर भी

वह नाचती रही
अबोध

यही उसकी नियति है :
मोक्ष ।

एक कवि की मृत्यु पर

वह उदास शख्स था
जब वह जवान था
तब भी नहीं हंसा—
मुक्त हंसी

वह प्रौढ़ हो गया
उम्र से पहले

अपनी ताकतवर कलम से
उसने की क्रांति
तोपों से भी अधिक भयावह
ग्रन्थों में रचा
संपूर्ण ब्रह्माण्ड

वह दूरदर्शी था
इसीलिए उसने बनाया एक नीड़
सुदृढ़

वह जूझता रहा
उम्र भर
अपने आप से
जीवन से, समाज से

जिन्दगी के आखिरी मोड़ पर
थक गया शरीर
फूल गए नथुने
फट गई नस मस्तिष्क की

सो गया वह चिरनिद्रा में—
पा गया अमरत्व !

बेबुनियाद जमीन

उसे समझ में आ गया है
कि रंग कड़वे होते हैं
और मौसम बदमिज़ाज

किसी भी मौसम का लुफ्त
उसके शरीर को कंपा नहीं सका
एक जलन और सड़ांध
सुबह से रात तक खत्म नहीं होती ।

आज तक अच्छी आत्माओं को
मिटा दिया गया है लकड़ी के क्रॉस पर
लटकाकर
या
ज़हर का घूंट पिलाकर

न जाने कितनी बार वह जीती
और मरती है
उदासी में वह हब्बा खातून के दर्द भरे गीत
गाती है
और दूर कमरे के शो-केस में लगी
अत्यन्त सौम्य, भव्य सुन्दरता का
बीभत्स अंत वीनस के कैनवस में उतार देती है ।

कितनी बेबुनियाद है यह ज़मीन
यह भूगोल

एक गहन गंभीर झील को
प्रताड़ना में ढकेलकर
तमाम भीड़
मदारी की तरह तमाशा देखती है
चुपचाप।

आम आदमी

रातोंरात
जब बिजलियां कौंधती हैं
और
कारें चीरती चली जाती हैं सड़कें
तब भी कोई जागता है
चुपचाप

खोदता है पथरीले रास्ते
कंकड़ों को संजोते हुए

वह भूल जाता है
कि मौसम कभी सुहावना, कड़क
और सर्द भी होता है

दूर से उसका बच्चा
चीथड़ों में सुबकता है
उसकी चीत्कार सड़क की दीवार से टकराकर
कहीं खो जाती है।

सड़कें बन जाती हैं
रातोंरात

कितने मजबूत हैं वे हाथ
जो बनाते हैं सड़कें
राजपथ

उन्हीं पर हम अठखेलियां करते गुजर जाते हैं
भूल जाते हैं
उनकी अथक मेहनत !

फुटपाथ

फुटपाथ
हमेशा अंधेरे में डूबी रहती है
वहां कभी सबेरा नहीं होता

दुबके, सहमे-से सोये रहते हैं
लोग
बेफिक्र

फुटपाथ के ऊपर के लैंपपोस्ट
तेज बल्बों से दमक रहे होते हैं

कुछ हाथ
बटोर रहे होते हैं
दिनभर का श्रम।

सच में
दहशत में सोये लोग
इस
फुटपाथ से भी ज्यादा
बदनसीब हैं!

भींग गई है पृथ्वी

रेगिस्तान में
बरसों बाद दिखा है मीठा झरना
और बरसा है पानी
भींग गई है तपती रेत
सूखे पेड़, प्यासे लोग···

वर्षों बाद
हुई है बरसात इस ओर
झड़ी-सी लग गई है धारा की
जमा हुआ लावा और मलबा
अचानक फूटा है आज

भींग गई है पृथ्वी
किसी के भागीरथ प्रयत्नों से
बिखरी है यह स्वर्णिम आभा !

बरसात : एक खामोशी

बरसात के बाद की चुप्पी
कितनी दमघोंटू होती है

सन्नाटे में बोलते झींगुर
टर्र-टर्र करते मेढ़क
अपने दर्द का इतिहास खोलते हैं

नहीं लगता
कुछ क्षणों पूर्व
यही बादल
अपनी गर्जन से चिंघाड़कर
गा रहे थे मल्हार।

बिजली कड़क रही थी
मस्ती में
और सबके शरीर में
नयी उमंग जगा रही थी
बरसात की पहली झड़ी।

परिणति

धधकती हुई चिनगारियां निस्तेज
लम्बे खड़े गुम्बदों में
सुप्त पड़े सिंह।

गुमनाम होकर किसी शहर में घूमना
कितना सुखद है
अपरिचित होकर रहना
कितना विश्वसनीय

हाथ फैलाते लोग लोभ में भरे
स्वार्थ से भिनभिना रहे हैं
सम्बन्ध धुंधला गए हैं
चाहे रक्त के हों
या औपचारिक

विश्वासघात
दूर पर खड़ा मुस्करा रहा है

एक शुरूआत नयी जिन्दगी की
उसने भी की है
समझौता कर लिया है
चुपचाप अपने आप से

गुजर गये हैं कई हंगामे,
कई-कई षड्यंत्र—
वह समाधिस्थ हो जाना चाहती है।

समानान्तर

बच्चे और बूढ़े एक हो जाते हैं
एक साथ खेलते
और चलते हुए।

बच्चा खोलता है आंखें
जिन्दगी को देखने
और
सूंघता है शब्द
दुनिया को चखने

बूढ़ा समझता है
सब कुछ
शुरुआत करती है
जिन्दगी
पुनः पकी आंख से।

समाधिस्थ

इस बार दीपावली बहुत कुछ कह गयी
हर बार की तरह दीपशिखा जली,
झिलमिला गया परिवेश
फिर भी
कुछ अलग, संभावना-पूर्ण
रख गई भविष्य की नींव

दीप ने धीमे से आकर
मेरे कान में फुसफुसाया
आओ जला दो चिराग
उस ओर
जहां अंधकार है

मैंने उठाकर
सौंप दी ज्योति नेत्रहीनों को

उन नेत्रहीनों की आशीष से
दूर-दूर तक फैल गया प्रकाश
जल उठे कई ज्योति-स्तम्भ

निर्धनों की कुटियों में
अवतरित हुई लक्ष्मी

वैभव ने बना दिया
सुदामा को रंक से नरेश

अभी खत्म नहीं हुई यात्रा
प्रकाश को पहुंचाना है कई ओर।
फैलानी हैं चतुर्दिक ज्योतिर्मय रश्मियां
संपदा, सुख, वैभव और अपूर्व शांति !

नीला प्रकाश
जब फैला था
तो उसने अपने हाथों से
बांटे थे स्नेह के पुष्प

वह हो जाना चाहती है
समाधिस्थ
और
बिखेरना चाहती है ज्योतिकण
तमाम संतप्तजनों, विघटित परिवारों
और क्रन्दन करते मासूम बच्चों के बीच।

अवाम

इस बार आवाज़
अवाम की है
जो पुकार रही है
मेरा ज़मीर बार-बार

अवाम ने हाथ पर रखी है
एक मशाल

हरे-भरे लहलहाते खेतों को लहलहाने
सूखे में झरनों का कलरव सुनने
झुर्रियों में से निकली है
ममता
जोश की

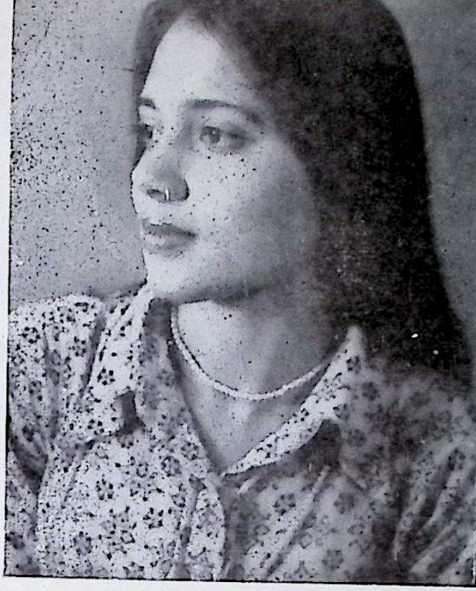
अनाथ को दिए हैं
तम्बू
और भरा-पूरा स्नेह

उस मरियम ने
बरसों बाद
बहुत दिनों बाद
उड़ेला है प्यार
सूखे मरुस्थल में।

सब ओर
उड़ रहे हैं
श्वेत कपोत

ध्वजारोहण कर
चहुं दिशाएं
बजा रही हैं
दुंदुभीं
एक सुदृढ़ साम्राज्य की।

□



अनुभूति चतुर्वेदी

जन्म : १८ अगस्त, १९५९ : विदिशा (म० प्र०)
शिक्षा : दिल्ली विश्वविद्यालय से एम० ए०।

कृतियां

उम्र के साथ-साथ (कविता संग्रह, १९८१) युवा पीढ़ी का बहुचर्चित काव्य संग्रह है। इसकी कई कविताएं भारतीय भाषाओं और अंग्रेजी में अनूदित हो चुकी हैं। **सम्बन्धों के दायरे** (उपन्यास, १९८४) अपने कथा-प्रयोगों के लिए विख्यात रहा है।

सम्मान एवं पुरस्कार

अनुभूति को कॉलेज जीवन में साहित्य कला परिषद् के दो पुरस्कार 'मीनाक्षी दी' (कहानी) तथा 'पीढ़ियों का संघर्ष' (नाटक) पर मिल चुके हैं।

नृत्य तथा कविता के लिए उनको आरोह पुरस्कार (१९८६) से सम्मानित किया गया। उनको अपनी कविता के लिए अखिल भारतीय दिनकर पुरस्कार (१९८७) मिल चुका है। मार्च १९८८ में इंटरनेशनल पोइट्स अकादमी, अमेरिका द्वारा फैलोशिप प्रदान की गई। अंतर्राष्ट्रीय सांस्कृतिक विकास संगठन द्वारा अभिनेत्री स्मिता पाटिल की स्मृति में उनको नृत्य एवं साहित्य के क्षेत्र में किए गए कार्य के लिए 'स्मित स्मृति पुरस्कार' (१९८८) दिया जा चुका है।

सम्प्रति एक प्रकाशन संस्थान की संचालिका।

तुम्हें शब्द दूं

अनुभूति चतुर्वेदी

